Dr. Vandana Suman
Associate professor
Dept. of Philosophy
H. D. Jain College, Ara
B. A. Part - 1 (Hons)
Paper - I
Indian Philosophy

(मीमांसा : अपूर्व)

मीमांसा दर्शन के प्रवर्तक जैमिनि हैं। इनके 'मीमांसा सूत्र' में इस दर्शन की रूप रेखा स्पष्ट दीख पड़ती है। शबर ने इन सूत्र पर जो भाष्य लिखा है उसे 'शाबर भाष्य' कहते हैं। आगे चलकर मीमांसा दर्शन के दो संप्रदाय बन जाते हैं — एक संप्रदाय के प्रणेता कुमारिलभट्ट हैं तो दूसरे के प्रभाकर मिश्र।

मीमांसा दर्शन आस्तिक दर्शन है। यह वेदों में पूर्ण आस्था रखता है। वेद के दो प्रमुख खंड हैं — ज्ञान खंड और कर्मखंड। ज्ञानखंड से संबद्ध रखनेवाला वेदान्त दर्शन है, किंतु कर्मखंड से संबद्ध दर्शन मीमांसा है। मीमांसा दर्शन में कर्म की विशद व्याख्या हुई है इसीलिए इसे कर्मकाण्ड भी कहा जाता है।

मीमांसा दर्शन का कहना है कि कर्म ही व्यक्ति को बंधन में डालते हैं और कर्म ही व्यक्ति को बंधनमुक्त करके मोक्ष भी दिलाते हैं। अशुभ एवं अनुचित कर्म करने से व्यक्ति बंधनग्रस्त होता है। शुभ एवं उचित कर्मों द्वारा व्यक्ति मोक्ष (liberation) की प्राप्ति कर सकता है।

मीमांसा के अनुसार धर्मानुसार कर्म ही उचित या शुभ है। धर्म के विरुद्ध किए गए कर्म अनुचित या अशुभ हैं। मीमांसा दर्शन ईश्वर को न मानकर वेदों को

मानता है। वेद में धर्म एवं अधर्म का विचार किया गया है। वैदिक आदेशों का पालन करने वाले कर्म उचित या शुभ हैं और इनका उल्लंघन करनेवाले कर्म अनुचित या अशुभ है। वेदों का अनुसरण करना धर्म है और उनकी उपेक्षा करना अधर्म। वेदों का कहना है — "कर्म करो क्योंकि कर्म ही कर्तव्य है।" मीमांसा का कर्म सिद्धान्त गीता के निष्काम कर्म के अधिक निकट है। गीता में भी कहा गया है — "बिना फल की इच्छा रखे कर्म करते जाओ।"

मीमांसा पुनर्जन्म में विश्वास करती है। इसके अनुसार प्रत्येक किया गया कर्म एक अदृष्ट शक्ति उत्पन्न करता है, जिसे 'अपूर्व' कहते हैं। अपूर्व - सिद्धान्त के आधार पर ही जीव को सुख या दुःख भोगने पड़ते हैं। कर्म की दृष्टि से 'अपूर्व' कर्म - सिद्धान्त कहा जाता है। अपूर्व सिद्धान्त का कहना है कि प्रत्येक कार्य में एक शक्ति निहित है, जिससे फल निकलता है। जिस प्रकार बीज में वृक्ष - उत्पन्न करने की शक्ति है,

इस प्रकार प्रत्येक कर्म से फल उत्पन्न करने की शक्ति है। बाधाओं के कारण कोई कर्म भले ही फल देने में असमर्थ हो, किंतु बाधाओं के हटते ही वह फल देने लगता है। (अपूर्व) स्वसंचालित है। इसे संचालित करने के लिए ईश्वर की आवश्यकता नहीं पड़ती। इसप्रकार मीमांसा (अपूर्व सिद्धान्त के आधार पर कर्मफल की व्याख्या प्रस्तुत करती है।

मीमांसा दर्शन में वैदिक कर्मकांड का अनुमोदन किया गया है। जो कर्म वेदों द्वारा उचित माने गए हैं, उन्हें संपादन से सुख मिलता है। यह सुख भौतिक जगत का सुख न होकर पारलौकिक सुख कहा जा सकता है। इस सुख की प्राप्ति के लिए हमें इस संसार में आत्म त्याग करना आवश्यक है। सुख प्रदान करनेवाले कर्म 'धर्म' कहे जाते हैं। विविध प्रकार के यज्ञ आदि धर्म की कोटि में आते हैं। जिनके संपादन से स्वर्गादि फल की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत वेदों द्वारा अनुचित घोषित कर्म निषिद्ध कर्म हैं। इन्हें 'अधर्म' कहा जाता है। इनके करने से दुख सुख से

वंचित होकर दुःख भोगते हैं। सुरापान या पशु हत्या आदि निषिद्ध कर्म हैं इनके करने से व्यक्ति को दुःख भोगना पड़ता है।

मीमांसा के अनुसार प्रत्येक कर्म का फल निश्चित रूप से मिलता है, वह कर्म चाहे लौकिक हो या वैदिक। आचार्य बदरायण के अनुसार ईश्वर कर्म का फल प्रदान करता है। परंतु मीमांसा दर्शन के आदि आचार्य जैमिनि कर्म को ही फलदाता मानते हैं। इनके अनुसार यज्ञ से ही फलों की प्राप्ति होती है, कर्म के संपादन एवं फल के समय में अंतर दीख पड़ता है। अभी किए गए यज्ञ कालांतर में स्वर्ग आदि की प्राप्ति कराते हैं। इसीप्रकार इस जीवन में किए गए कर्म अगले जीवन में फल उत्पन्न करते हैं। व्यक्ति विगत जीवन में किए गए कर्मों का फल वर्तमान जीवन में भोगता है तथा वर्तमान में किए गए कर्मों का फल भी भविष्य में भोगना पड़ता है। मीमांसा आत्मा की अमरता एवं पुनर्जन्म में विश्वास रखता है। इसप्रकार कर्म और कर्मफल के समय में एक दूरी दीख पड़ती है। कर्म तथा कर्मफल में बहुत अधिक व्यवधान होता है।

मीमांसा कार्य-कारण की व्याख्या एक नये ढंग से करती है। इसके अनुसार कार्य की

उत्पत्ति के लिए केवल कारण पर्याप्त नहीं है। कारण के अतिरिक्त शक्ति की भी आवश्यकता पड़ती है। यद्यपि कि बीज में अंकुर निहित होता है परन्तु यदि बीज को भून दिया जाए, अर्थात उसकी शक्ति नष्ट कर दी जाए तो उससे अंकुर नहीं निकल सकता। अतः बीज के अतिरिक्त इसकी 'शक्ति' को भी कारण की सहायता पहुँचानेवाला पदार्थ मानना आवश्यक है। 'शक्ति' के मानने का मौलिक उपयोग मीमांसा दर्शन में स्पष्ट दीख पड़ता है।

यहाँ एक प्रश्न उठता है। आज किए गए कर्मों का फल वर्षों बाद क्यों मिलता है? यज्ञ का अनुष्ठान आज किया जाता है और इसका स्वर्ग-रूपी फल अनेक वर्षों के बाद मिलता है। ऐसा क्यों होता है? इसके लिए मीमांसा एक प्रकार की अदृष्ट शक्ति की कल्पना करते हैं जिसे इन्होंने 'अपूर्व' की संज्ञा दी है। इसे या तो फल का पूर्ववर्ती अदृष्ट कहा जा सकता है या कर्म की अनुवर्ती अवस्था। 'अपूर्व' एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा कालांतर में फल की प्राप्ति होती है। कर्म तथा इसके फल के मध्य अपूर्व एक अलौकिक कड़ी है। आज किए गए कर्म तथा कालांतर में उत्पन्न होनेवाले

फलों के बीच में 'अपूर्व' वर्तमान रहता है जो कर्ता और कर्म से उत्पन्न होता है तो इसकी और कर्मफल का निष्पादक होता है। यह 'अपूर्व' भी 'शक्ति' और स्वतंत्र का ही कर्मकाण्ड के क्षेत्र में एक अनूठा प्रतीक है।

कुमारिल के अनुसार कर्म द्वारा उत्पन्न निश्चित शक्ति जो परिणाम तक पहुँचा 'अपूर्व' है। अपूर्व का अस्तित्व अर्थापत्ति से प्रमाणित होता है। कर्ता द्वारा किया गया यज्ञ कर्ता में साक्षात एक शक्ति उत्पन्न करता है जो उसके भीतर अन्य शक्तियों की तरह आजीवन मौजूद रहती है और जीवन के अंत में उसके लिए प्रतिज्ञात पुरस्कार दिलाती है।

कुमारिल के इस मत को प्रभाकर नहीं मानते। प्रभाकर के अनुसार अपूर्व आत्मा के अन्दर नहीं माना जा सकता। वह इसे न ही मानते कि कर्म कर्ता के अंदर एक निश्चित क्षमता उत्पन्न करता है, जिसे अंतिम परिणाम का निकटतम कारण कहा जाता है। यज्ञ इस प्रकार की कोई क्षमता उत्पन्न करता है, इसकी सिद्धि प्रत्यक्ष, अनुमान अथवा धर्मशास्त्र द्वारा नहीं हो सकती। कर्ता के प्रयत्न से

कर्म उत्पन्न होता है और कारण - रूपक्षमता इसी प्रकार से शक्ति कर्म में रहनी चाहिए। अतः जो कि कर्ता में। डा० राधाकृष्णन का मत है कि प्रभाकर का मत कुमारिल के मत से अधिक संतोषप्रद नहीं कहा जा सकता।

मीमांसा के अनुसार 'अपूर्व नित्य है। यह स्वसंचालित है।' इसका संचालन ईश्वर द्वारा नहीं होता। उद्योतकर ने अपूर्व सिद्धान्त की आलोचना की है। इनके अनुसार यह नित्य नहीं कहा जा सकता। इसे नित्य मानने पर मृत्यु असंभव हो जाएगी, क्योंकि पाप - पुण्य भी नित्य हो जाएगें।

शंकराचार्य ने भी मीमांसक के अपूर्व - सिद्धान्त की आलोचना करते हैं। इनका कहना है कि बिना किसी अपूर्व को उत्पन्न किए इस सूक्ष्म नष्ट होने वाले कर्म कालांतर में फल देने में समर्थ नहीं हो सकता। अतः जो कर्म सूक्ष्मतर अवस्था है यह फल की पूर्वावस्था है, वही (अपूर्व) है। इनकी आपत्ति यही यह है कि 'अपूर्व' अचेतन होने पर बिना किसी आध्यात्मिक सत्ता के कार्य नहीं कर सकता। इसके संचालन के लिए आध्यात्मिक सत्ता (या ईश्वर) की आवश्यकता पड़ जाती है। केवल अपूर्व - सिद्धान्त के आधार पर कर्मों की पूर्ण एवं संगत व्याख्या संभव नहीं है।